SWAR SINDHU: NATIONAL PEER-REVIEWED/REFEREED JOURNAL OF MUSIC
A UGC CARE LISTED JOURNAL
ISSN 2320-7175 (O) | VOLUME 12, ISSUE 03, DECEMBER, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org

पं. कुमार गन्धर्व के सांगीतिक दर्शन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

DR. TRIPTI WATWE

Assistant Professor and HOD, Dept. of Music, Women's College, Agartala, Tripura

सार

संगीत की आकाश गंगा में कई नक्षत्रों का प्रकाश अपनी आभा से नवीन रश्मियों को अनुप्राणित करता रहा है। आज की पीढ़ी निःसंदेह अपनी क्रियात्मक ऊर्जा और सृजनात्मकता से अपनी नई दिशा बना रही है परन्तु यदि संगीत के परिप्रेक्ष्य में कहा जाय तो हमारे सांगीतिक मनीषियों का जीवन एवं सांगीतिक दर्शन उस ध्रुव तारे की तरह है जो स्वयं अटल रहकर पथ च्युत नौनिहालो एवं संगीत के साधकों का मार्ग हमेशा प्रशस्त करता रहा है। पं. कुमार गन्धर्व संगीत एक ऐसे ही मनीषी थे जिनकी आभा बिल्कुल उस ध्रुव तारे की तरह थी जिसके प्रकाश से कई संगीत साधक लाभवान हो रहे हैं तथा जिनके चरित्र की बालवत् उत्सुकता , सौम्य स्वभाव, संगीत के प्रति अनन्यता एवं हर परिस्थिति में अपने संगीत को निरंतर और अधिक सुंदर बनाने का प्रयास उनको एक अद्वितीय संगीतकार बनाता है। कुमारजी ने अपने जीवन का हर क्षण न केवल संगीत को समर्पित किया बल्कि अपना अविस्मरणीय योगदान भी उस संगीत को दिया। वे अपने संगीत को लेकर बिल्कुल भी संतोषी नहीं थे। हमेशा नवीनता की खोज में रहते थे। उनका मानना था कि संगीत के हर क्षण में उसका विलय और उद्भव होता है। कुमार जी कहते थे कि मैं कला के एक नश्वर रूप का पुजारी हूँ, आज जिस राग तिलककामोद को आप लोग मुझे गाते हुए सुनेंगे ,कल यह दोनों ही मर चुके होंगे; कल नवीन तिलककामोद और नए कुमार गन्धर्व होंगे।

ऐसे संगीत साधक थे कुमारजी कि गंभीर तपेदिक की बीमारी को भी अपनी सकारात्मकता और संगीत के प्रति अटल प्रतिबद्धता से इन्होने परास्त कर दिया और जीवन के उन कठिन दिनों में भी रोगशय्या पर लेटे हुए मानसिक रूप से संगीत का ध्यान एवं चिंतन करते रहे। फलस्वरूप पांच वर्ष , याने सन् १९४७ से १९५२ तक बाह्य रूप से पूर्णतः संगीत विहीन रहते हुए भी कुमारजी ने इस जानलेवा रोग पर न केवल विजय हासिल की बल्कि अपने चिंतन से संगीत समुद्र का गहरा मंथन कर अनमोल सांगीतिक मणियों को भी प्राप्त किया जिसका प्रमाण हमें उनकी गायन शैली में मिलता है जिसे उन्होंने अपनी अस्वस्थता से ठीक होने के बाद प्रस्तुत किया। । साथ ही इसी व्याधि के दौरान लोक संगीत विशेषतः मालवा के लोक गीतों एवं भक्ति संगीत पर गहरा शोध कर कुमार जी ने अपनी अमिट छाप छोड़ दी ।

प्रस्तुत आलेख में प्रयास किया गया है कि इस महान शास्त्रीय गायक, वाग्येकार एवं संगीतकार पं. कुमार गन्धर्व के जीवन को सांगीतिक परिप्रेक्ष्य से देखते हुए उसका मर्म खोजा जाये ताकि सभी पाठकों को प्रेरणा मिल सके।

सांकेतिक शब्द *- पण्डित कुमार गन्धर्व , लोकगीत , गायन शैली , तपेदिक , संगीत योगी, भक्ति संगीत ।*

प्रस्तावना : जन्म एवं प्रारंभिक संगीत शिक्षा

कुमारजी का जन्म सन् १९२४ को उत्तर कर्नाटक के बेलगाउँ ज़िले में एक सांगीतिक परिवार में हुआ। इन्हें नाम दिया गया शिवपुत्र सिद्धारमैया कोमकली। संगीत के अलौकिक गुणों को लेकर ही कुमार जी का जन्म हुआ जिसके चलते पांच वर्ष की आयु में ही इनमे संगीत के संस्कारों को देखा जाने लगा तथा दस की अति अल्पायु में तो इन्होने अपना प्रथम मंच प्रदर्शन भी दिया। उनकी गायकी से अभिभूत होकर उन्हें 'कुमार गन्धर्व' की उपाधि से विभूषित किया गया जो ताउम्र उनकी पहचान बना रहा।

कुमार जी को उनके पिता ने आयु के ग्यारहवे वर्ष में पं. बी.र. देवधर के पास संगीत शिक्षा के लिए भेज दिया। अपनी कुशाग्र बुद्धि से जल्द ही तरुण कुमार ने देवधरजी से संगीत की बहुत सी चीज़ें सीख ली और २० वर्ष के पहले ही देवधरजी की संगीत संस्था में छात्रों को सिखाने भी लगे थे। सन् १९४० में कुमार गन्धर्व का नाम हर व्यक्ति की ज़ुबान पर था ऐसी उनकी ख्याति चारों दिशाओं में फैल रही थी।

वैवाहिक गठबंधन एवं शारीरिक अस्वस्थता

सन् १९४७ में कुमार जी ने भानुमति कंस , जो की देवधर जी की शिष्या थी ,से विवाह किया परन्तु उसी वर्ष उन्हें तपेदिक की लाइलाज बीमारी ने घेर लिया। डॉक्टरों की सलाह पर पं. कुमार गन्धर्व मुंबई से उत्तरी मध्य प्रदेश के एक छोटे से शहर देवास में आकर बस गए ताकि यहाँ के शुद्ध जल वायु से उनकी तबियत सुधर सके। तब उनकी उम्र मात्रा २४ वर्ष थी।

इस बीमारी ने उन्हें संगीत साधना से बाह्य रूप से तो संभवतः दूर कर दिया परन्तु आत्मिक स्तर पर संगीत से यह स्वर-योगी दूर न रह सका। जिस व्यक्ति का स्वभाव दिन रात संगीत साधना में तल्लीन रहने का हो उसके जीवन के अगर संपूर्ण पांच वर्ष संगीत विहीन कर दिए जाएँ तो उसे जिस व्यथा का सामना करना पड़ेगा ऐसा ही कुछ कुमार जी के साथ घटित हुआ। डॉक्टरों का कड़ा निर्देश था कि यदि गाएंगे तो मृत्यु अवश्यम्भावी है। ऐसी परिस्थिति में भी कुमार जी ने हार नहीं मानी। वे अपनी मानसिक एवं आत्मिक शक्ति के बल पर संगीत की आध्यात्मिक साधना करते रहे। राघव मेनन अपनी पुस्तक ' द म्यूजिकल जर्नी ऑफ़ कुमार गन्धर्व ' में लिखते हैं कि जब मैंने श्री कृष्णन नाम्बिआर (ये महोदय, कुमार जी की उनकी अस्वस्थता में देख रेख करते थे), से पूछा कि क्या कुमारजी को उस समय कभी उन्होंने गाते हुए सुना तब उन्होंने कहा कि कदाचित नहीं परन्तु बहुत पास जाकर सुनने से ऐसा अनुभव होता कि शायद कुमारजी कुछ गुनगुना रहे हों। '

सन् १९५२ में स्ट्रेप्टोमाइसिन की औषधि कुमारजी के जीवन में दैवीय कृपा बनकर आयी और तब कुमारजी धीरे धीरे पुनः स्वस्थ हुए। किन्तु दुर्भाग्यवश कुमारजी की इस बीमारी के कारण एक फेफड़ा नष्ट हो गया जिसके कारन लगभग ४० साल वे एक ही फेफड़े से गाते रहे।

अनूठी गायन शैली और लोकमत

साधारण लोकमतानुसार कुमार जी की गायन शैली जो उनकी बीमारी के बाद विकसित हुई , उनके दो फेफड़े न होने के कारण हुई,जो की सर्वथा एक मिथ्या है। वास्तव में बीमारी के बाद भी उनमें पर्याप्त श्वास था जिसे वे गायन एवं जीवन दोनों के लिए प्रयुक्त कर सकते थे। दरअसल कुमार जी की गायन शैली में जो विराम , पुनरावृत्ति और स्वतः स्फूर्त स्वरों का उत्तेजक लगाव सुनने को मिलता है वह एक फेफड़े के कारन नहीं अपितु उस बीमारी के दौरान उनके द्वारा किये हुए स्वरों की आध्यात्मिक साधना की देन है। इस साधना में कुमारजी ने संगीत के 'निर्गुणत्व' को करीब से अनुभव किया। कुमारजी का यह अनुभव उन्हें और उनके माध्यम से समस्त कला साधकों को यह अमर सन्देश दे गया कि संगीत का साम्राज्य अति-विशाल है। साकार जगत के परे जब संगीत की निर्गुण साधना की जाती है अर्थात् भौतिक साधनों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक धरातल पर की जाती है वहीँ से शुरू होती है एक सच्चे संगीत साधक की अंतरंग यात्रा , यहीं से सही मायने में स्वरों के प्राण जागृत होते हैं। इसी साधना में स्वामी हरिदास , त्यागराज इत्यादि जीवनभर मगन रहे जिसके माध्यम से इन महापुरुषों का संगीत योग बन गया और इन्हें परमात्व तत्व का साक्षात्कार भी हुआ।

कुमारजी की संगीत साधना और गुरु माँ अंजनी बाई मालपेकर का योगदान

वस्तुतः संगीत के इस निर्गुण तत्व के साथ कुमारजी का परिचय बहुत पहले ही हो चुका था जब वे देवधर जी से संगीत की शिक्षा ले रहे थे परन्तु इसका श्रेय देवधर जी को आंशिक रूप से ही जाता है। हुआ यूँ कि देवधरजी से संगीत सीखते समय ,कुमारजी के ईश्वर प्रदत्त सांगीतिक प्रतिभा को देखते हुए देवधरजी ने कुमारजी का परिचय विदुषी अंजनी बाई मालपेकर से करवाया था ताकि तरुण उभरते हुए कुमार में संगीत की और गहराई से समझ विकसित हो सके। अंजनी बाई कुमारजी का मार्गदर्शन मातृवत्सलता से करती रहीं और स्वरों के आध्यात्मिक रूप से कुमारजी को अवगत कराया। वे एक माँ की भाँति युवा कुमार की देखभाल करतीं , बाद में कुमारजी उनको याद करते हुए भावविह्वल होते और कहते थे की मुझ जैसा भाग्य शाली व्यक्ति कोई नहीं जिसे ऐसे ऊँचे कद के गुरु मिले हों।

कुमारजी ने देवधरजी और अंजनी बाई से १२-१२ वर्ष संगीत की तालीम ली याने कुल २४ वर्षों तक कुमार जी को अपने गुरुओं का सानिध्य मिला। कुमारजी प्रातः काल अंजनी बाई से तालीम लेते और दिन के उत्तरार्ध में देवधरजी के पास रहते थे। अंजनी बाई कुमारजी के पसंद का खाना बनवाती थे और खुद पास बैठकर एक माँ की भाँति कुमारजी को भोजन करवाती थीं। ऐसे आत्मीय गुरुओं का आशीर्वाद पाकर पंडित कुमार गन्धर्व इतने संघर्षों के बावजूद अपनी सांगीतिक यात्रा को सफल बना सके।

अंजनी बाई ने कुमार जी को सिखाया कि हर स्वर का अपना काल्पनिक एक इंच चौड़ा घनत्व होता है , इस परिधि में यदि कोई स्वर-साधक रहता है तो वह सुरीला कहलाता है अन्यथा बेसुरा हो जाता है। इस परिधि के अंतर्गत ५-६ विश्रांति स्थल को जो गायक समझकर गा लेता है ,बस समझ लो उसे नाद ब्रह्म के दर्शन हो जाते हैं। अंजनी बाई की यही बातें कुमारजी ने अपने जीवन में आत्मसात कर ली। वरन् अपनी अवस्थता में कुमारजी धीरे धीरे गुनगुनाकर इसी क्रिया को साधने का प्रयत्न करते रहे और स्वस्थ होने पर अपनी गायन शैली में प्रयुक्त विभिन्न

तरीकों से जैसे विराम, पुनरावृत्ति या वह स्वरों की फ़ेंक ही क्यों न हो ,स्वरों के उसी गंभीरतम, गूढ़तम, शून्य या यूँ कहें स्वर के केंद्र बिंदु को छूने का अभ्यास करते रहे जिसके कारन उनका संगीत हर सुनने वाले को दैवीय आनंद की अनुभूति करवा गया। इस प्रक्रिया ने उनके संगीत को अनूठा बना दिया जिसे कई चाहने वाले मिले और कुछ से उन्हें आलोचना भी मिली।

दैनन्दिनी जीवन के झरोखे से झाँकता कुमारजी का सांगीतिक चिंतन एवं दर्शन

कुमार जी के बालवत् कौतुहली स्वभाव ने उन्हें हमेशा नवीन के प्रति आकृष्ट किया। संगीत उनके लिए जीवन से भिन्न कोई वस्तु नहीं थी बल्कि उनका ये मानना था कि संगीत का प्रवाह हर विषय ,कला , विज्ञान एवं दर्शन से प्रभावित और अनुप्राणित है ,जीवन के प्रत्येक अंश से प्रेरणा लेकर संगीत और भी पुष्ट होता है। संगीत कुमारजी के लिए जीवन का पर्यायवाची शब्द ही था।

संगीत जीवन से अविछिन्न है और इसी भाव में बसा है संगीत का दिव्य सौंदर्य। कुमारजी के जीवन से हमें यह सीख मिलती है कि यहाँ कुछ भी स्वरों की मर्यादा के परे नहीं है , उनका गहरा चिंतन उनके गायन में झलकता है। उनके प्रिय मित्रों में जीवन के लगभग हर क्षेत्र के लोग होते थे जिनसे वे घंटो बातें किया करते। उनके परम प्रिय मित्रों में संगीतज्ञों के अलावा थे साहित्यकार , शिक्षक , पत्रकार ,चित्रकार, चिकित्सक, शिल्पकार , वास्तुविद , लेखक इत्यादि सभी थे जिनके साथ उनके विषयों पर चर्चा करना कुमारजी को विशेष पसंद था। सुबह और शाम उनका एक और प्रिय काम था बरामदे के झूले पर बैठकर अपने वृहद् बागीचे में पक्षियों को सुनना और उन्हें रिकॉर्डर पर रिकॉर्ड कर उन स्वरों की शोध करना! ऐसे कौतुहली थे हमारे कुमारजी।

संगीत के निर्गुण साधक का जन्म

गंभीर बीमारी में अपने घर के बाहर से गुज़रते एक गाते हुए भिक्षु साधु को बुलाकर उसका गाना सुनकर सीखने का प्रयास करना , यह केवल पंडित कुमार गन्धर्व ही कर पाते। यही है स्वरों के निर्गुण साधक की निशानी जिसमें व्यक्ति अपनी विशिष्टता को भूलकर समर्पण कर देता है। यहीं , मन के इसी उत्कृष्ट आध्यात्मिक धरातल पर स्वरों का प्रकाश जागृत होता है और यही निर्गुण स्वर साधना का मर्म है जिसका पालन कुमारजी ने आजीवन किया।

जिस भिक्षु का उल्लेख उपर्युक्त परिच्छेद में किया गया है वह भी पंडित कुमार गन्धर्व के जीवन से जुडी हुई एक प्रेरणादायी घटना है। तपेदिक से ग्रस्त होने के कारन जब कुमारजी रोगशैया पर थे यह उसी समय की बात है। वास्तव में इस घटना का सम्बन्ध कुमारजी की सुरबद्ध लोक प्रसिद्ध कबीर दासजी की रचना 'सुनता है गुरु ज्ञानी ' से है। कुमारजी कहते हैं ' मैं एक दिन बरामदे में बैठा था तभी एक भिक्षु महात्मा कबीर की यही रचना गाते हुए मेरे दरवाज़े पर भिक्षा के लिए आया। जहाँ मैं रहता हूँ वहां कई नाथ पंथी भिक्षु साधु भिक्षा के लिए घर घर जाते हैं और तब तक गाते हैं जब तक उन्हें कुछ भिक्षा नहीं मिल जाती। मैंने देखा कि यद्यपि वह साधु अच्छा गायक नहीं था परन्तु उसके स्वरों में एक 'निर्गुणी' भाव था। वह अपने गायन में अपने मन को ही प्रस्तुत कर रहा था जो मुझे प्रेरणादायी प्रतीत हुआ। उस साधु के मन में वैराग्य था , वह किसीको सुनाने के लिए नहीं बल्कि अपनी मौज में गा रहा था जिसके कारन उसके गायन से मस्ती और बेपरवाही झलक रही थी। मैंने इस पर चिंतन किया और उस भिक्षु के गले से निसरित स्वरों को अपने सृजन में ढालने का प्रयास किया। वस्तुतः निर्गुणी स्वरों का प्राण ही यही बेपरवाही, मस्ती और वैराग्य है जिससे कबीर दासजी के निर्गुणी भजन ओतप्रोत हैं। '

पंडितजी ने इस दौरान मालवा के लोक गीतों और भजनों पर गहरा अनुसन्धान किया तथा लोक गीतों एवं भक्ति गीतों के साहित्य, रस और भाव पर उनका गहन विचार संगीत की इन विधाओं के लिए एक सिद्ध मंत्र की तरह काम कर गया जिसकी वजह से मालवा के लोक गीतों का बहुतायत में प्रचार प्रसार भी हुआ और विश्व स्तर पर इन गीतों के साथ साथ विभिन्न संत वाणियों का प्रदर्शन भी कुमारजी ने अपनी अनूठी शैली एवं भावप्रवणता के साथ किया जिसे लोगों ने खूब सराहा।

सौंदर्य शास्त्र मर्मज्ञ

कुमारजी की दृष्टि सौंदर्य की खोज में लगी रहती थी चाहे वह कोई भी विषय हो , उनके लिए उसका 'एस्थेटिक्स' सर्वोपरि था। संगीत में भी उनका यही दर्शन था। उनका मानना था कि अतिरिक्त रियाज़ से कंठ अवरुद्ध हो सकता है इसलिए जितनी आवश्यकता हो उतना ही

अभ्यास करना चाहिए। वे व्यंग्यात्मक रूप से कहते थे कि ये गला है कोई टार्ड रोड नहीं कि जिस पर बार बार अभ्यास का रोड रोलर घुमाया जाता रहे। ईश्वर ने दिमाग दिया है की नहीं उसका इस्तेमाल भी करना चाहिए। गाने में सोच की भी परम आवश्यकता होती है। अपने संगीत चिंतन को जागृत रखते हुए जितनी आवश्यकता हो संगीत का उतना ही अभ्यास करना चाहिए।

कुमारजी का संगीत अभ्यास के प्रति यह दृष्टिकोण कदाचित उनकी अस्वस्थता में विकसित हुआ होगा जब उन्हें आत्मिक स्तर पर संगीत चिंतन और अभ्यास का अनुभव प्राप्त हुआ होगा तथा गले पर अतिरिक्त दबाव देने के प्रति भी तभी से वे अधिक संवेदनशील हुए होंगे।

कुमारजी के व्यक्तित्व में एक सुंदर सम्मिश्रण था , वे गूढ़ भी थे और बालवत् भी , गंभीर भी थे और चंचल भी , अंतर्मुखी भी थे और बहिर्मुखी भी। जैसी परिस्थिति हो वे उसी में ढल जाते थे। उनके मित्र और निकटस्थ लोग कहते हैं कि कुमारजी में जीवन के हर क्षेत्र के प्रति समान उत्साह और कौतुहल था। उन्हें फल फूल ,पौधों, वृक्षों, पंछिओं से , बच्चों ,पुस्तकों से सभी से बहुत लगाव था। यही नहीं उन्हें सब्जियां खुद खरीदना बेहद पसंद था। खुद बाजार में कई झोलों को कंधे पर झुलाये सब्जियों को चुनचुनकर और सब्जी बेचने वालों से बतियाते उन्हें कई लोगों ने देखा है। भिंडी (ओकरा) को विशेषतः चुनकर खरीदना उन्हें बहुत पसंद था। बिजली मिस्त्री भी उनके घर जाता तो उससे भी उससे सम्बंधित व्यवसाय के बारे में पूछते थे। उनका उद्देश्य केवल इतना होता था कि वे ज़्यादा से ज़्यादा लोगों से परिचित हो एवं उनके विषय में जाने क्यूंकि वे मानते थे की इस जीवन में कुछ भी 'एक्सक्लूसिव ' नहीं है , हर चीज़ , हर व्यक्ति , हर विषय उस जिगसॉ पज़ल के अवयव ही हैं जिनको एक साथ रखे बिना जीवन का चित्र पूर्ण नहीं हो सकता। संगीत भी इस जीवन से ही पुष्ट होता है एवं इसी समाज का एक अभिन्न अंग है। यहीं से इसके तार जुड़े हुए हैं एवं तभी संगीत को लोक कला के अंतर्गत ही रखा जाता है। संगीत का सम्बन्ध जिस रस शास्त्र से है , उसका जन्म इसी समाज -तंत्र से होता है। समाज के ताने -बाने को समझे बिना संगीत को समझना वैसे ही है जैसे बिन पानी मछली को समझना ! कुमार जी स्वरों की तुलना पानी में तैरती मछली से करते थे। वे कहते थे की पानी में तैरती मछली की तरह ही स्वर आगे भी जा सकते हैं पीछे भी , और कहीं भी न जाकर उसी स्थान पर भी ऊपर नीचे तैर सकते हैं ठीक उसी तरह एक स्वर भी उसी स्थान पर रहते हुए विभिन्न गहराईयों और स्वरूपों को दिखा सकता है।

गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था और कुमारजी का जीवन दृष्टांत

कुमारजी के चिंतन में हमें सहज ही भारतीय सनातन परंपरा के अंतर्गत प्रचलित शिक्षा पद्धति के तत्व प्राप्त होते हैं। व्यक्ति के व्यापक विकास के लिए जिस शिक्षा पद्धति का पालन हमारे गुरुकुलों में किया जाता रहा है , कुमारजी का संगीत और जीवन के प्रति दृष्टिकोण कुछ-कुछ उसी की तरफ इंगित करता हुआ प्रतीत होता है। प्राचीन काल से हमारे गुरुकुल व्यक्तित्व गढ़ते रहे हैं। एक व्यक्तित्व के आकलन में आजकल हम कुछ शब्दावलियों का प्रयोग प्रायः करते हैं जैसे 'इमोशनल क्वोशन्ट ' और 'इंटेलिजेंस क्वोशन्ट ' , इन शब्दों का शाब्दिक अर्थ होता है भावनात्मक और बौद्धिक भागफल जिनको मापक की तरह प्रयोग कर एक व्यक्तित्व का सर्वांगीण गुण-स्तर मापा जा सकता है। इनकी संरचना पहले शिक्षा के दौरान ही सहज ही में हो जाया करती थी। एक विद्यार्थी को जीवन से जुडी हुई हर प्रकार की शिक्षा दी जाती थी ताकि वह हर परिस्थिति का सामना धैर्य ,मज़बूती और सफलता के साथ कर पाए। सिवाय इसके उसे अपने प्रिय विषय में भी सोचने और इवॉल्व होने के लिए दूसरे विषयों से भी प्रेरणा मिलती थी। मस्तिष्क का विकास होता था।

विज्ञान कहता है कि मस्तिष्क के संपूर्ण विकास में उसके दाये और बाएं दोनों भाग समान रूप से ज़िम्मेदार होते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं विवरण से हमें पता चलता है कि मनुष्य के मस्तिष्क का दायाँ भाग उसकी संवेदनाओं, सृजनशीलता और रचनात्मकता को नियंत्रित और परिचालित करता है जबकि बायें भाग का काम है व्यक्ति में तर्कसंगति ,भाषा और आलोचनात्मकता इत्यादि गुणों का संचालन करना। कुमारजी ने अपनी अस्वस्थता में अपने मस्तिष्क के इन्हीं गुणों पर मानो आत्ममंथन किया हो। उनके व्यक्तित्व में तर्कसंगति और सृजनशीलता दोनों ही पक्ष विद्यमान थे।

हर विषय में उनका सहज बालवत् कौतुहल और सरलता के गुणों ने उनको आजीवन एक पंडित नहीं वरन् एक विद्यार्थी बनाकर रखा। वे किसी भी व्यक्ति, विषय या परिस्थिति की संगत में आसानी से ढल जाते थे। बच्चे बूढ़े और जवान सभी उनको सामान रूप से प्यार करते

थे। उनके पास सभी के लिए उपयुक्त विषय था बतियाने के लिए ,इसलिए जिस महफ़िल में वे नहीं होते तो वो जगह सभी को नीरस सी जान पड़ती थी। ये तो संकेत उसी परिपक्व 'इमोशनल क्वोशन्ट 'का है जिसका ज़िक्र अभी थोड़े देर पहले उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया था। अपने आसपास के लोगों के साथ एक व्यक्ति कितना अच्छा सामंजस्य बैठकर अपने जीवन काल में चल सकता है उसी का द्योतक है यह इमोशनल क्वोशन्ट।

उपसंहार

कुमारजी का भी मानना यही था कि कला जीवन की ही एक वृहद् इकाई है। घर में अकेले बैठकर संगीत की तपस्या और साधना तो करनी ही है किन्तु साथ ही अन्य विषयों में भी रूचि लेकर उन विषयों से सीखने का प्रयत्न भी यदि एक कला साधक करे तो उसे अपने विषय में भी निःसंदेह प्रेरणा मिलेगी , नया दृष्टिकोण जागृत होगा , नए आयाम उसे अपनी ही कला या विषय में मिलेंगे जो शायद एक ही विषय में बंधकर रहने से नहीं प्राप्त होंगे।

संगीत में जिस प्रकार स्वर संवाद होता है उसी प्रकार जीवन में भी विभिन्न विषयों जैसे साहित्य , ललित कला , इतिहास इत्यादि के साथ एक संगीत साधक का बौद्धिक संवाद जारी रहना चाहिए जिसके फलस्वरूप उसका संगीत और परिष्कृत होगा। पं. कुमार गन्धर्व अपने जीवन दर्शन, जीवन और कला के प्रति अपने नज़रिये एवं कला के प्रति अपनी गहरी सोच से आज भी संगीत साधकों के लिए ही नहीं वरन् अन्य विषयों में रूचि रखने वालों के लिए भी प्रकाश स्तम्भ की भाँति दिशा दिखा रहे हैं। परिपक्व साधक उन इशारों को समझकर अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। जिस प्रकार एक अनन्य भक्त अपने आराध्य के सिवाय किसी और को नहीं चाहता , यदि दूसरे देवताओं का दर्शन भी हो जाये तो अवहेलना भी नहीं करता वरन् आशीर्वाद रूप में अपने इष्ट के प्रति अतिरिक्त भक्ति और समर्पण की ही कामना करता है , ठीक उसी प्रकार पं. कुमार गन्धर्व अपने आराध्य 'संगीत' की अनन्य भाव से आजीवन पूजा करते रहे। उन्होंने दूसरे विषयों की आलोचना या अवहेलना कभी नहीं की बल्कि उन विषयों से प्रेरणा लेकर अपने ही प्रिय विषय 'संगीत ' को नवरस युक्त बनाने का प्रयास किया।

अंततः इस महान शास्त्रीय गायक, वाग्येकार एवं संगीतकार पं. कुमार गन्धर्व के जीवन को सांगीतिक परिप्रेक्ष्य से देखते हुए यही सार मिलता है कि कुमारजी ने संगीत की तालीम स्वयं जीवन से ही ली। जीवन से ही वे हर पल सीखते रहे सौंदर्य सृजन और अपने को इस स्वर साधना में एक तपस्वी की भाँति विलीन कर दिया जिसके फलस्वरूप शास्त्रीय संगीत के 'निर्गुणी' अंश के वे एक महान सृजनहार बन गए और शिवपुत्र सिद्धारमैया कोमकली अपने संगीत से अमर कुमार गन्धर्व बन गए। अपनी सांगीतिक प्रस्तुतियों में अपने साथ हर बार श्रोताओं को भी उसी यात्रा पर ले गए , अदृश्य , अमूर्त की यात्रा जिस अलौकिक अनुभव को श्रोता कभी भूल न पाए।

सन्दर्भ

हेस, लिंडा. सिंगिंग एम्प्टीनेस , सीगल बुक्स , कोलकाता २००९ , पृ १६-१७
भाटवडेकर, मो. वि.। कुमार गन्धर्व: मुक्काम वाशी , मुंबई १९९९ , पृ ८०-८१
३. गन्धर्व, कुमार. अनूपरागविलास भाग १ , मौज प्रकाशन गृह , मुंबई ,१९६५, पृ. १८ -१९